❀ श्रीः ❀

श्रीमदमृतग्रन्थमालायाः—(५)

पञ्चमं पुष्पम् ।

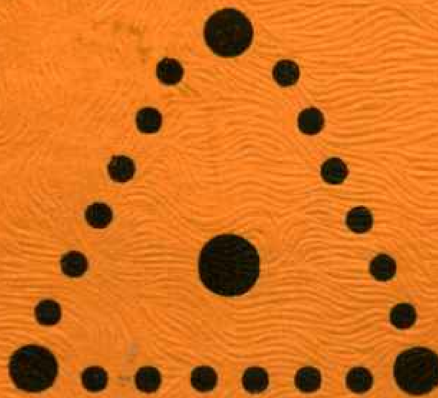
सर्वतन्त्रस्वतन्त्र—

महामहिम-आचार्य—

श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीतं

* श्रीसञ्जीवनीदर्शनम् । *

हिन्दीभाषान्तरसहितम्



प्रथमं संस्करणम्
दो सहस्र

विक्रम सं० २०२०

मूल्यं-रूप्यकमेकम्

प्रकाशकः—
राजपण्डित श्रीगोविन्दमिश्र
(अध्यक्ष-श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन)
चौबुर्जा, भरतपुर (राजस्थान)

मुद्रकः—
रघु प्रिंटिंग प्रेस, जोगीवाड़ा
देहली

॥ श्रीः ॥

श्रीमदमृतग्रन्थमालायाः पञ्चमं पुष्पम्

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र
महामहिम-आचार्य
श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीतं

* श्रीसञ्जीवनीदर्शनम् *

श्रीबलजिन्नाथ पण्डित
एम.ए.एम.ओ.एल. प्रणीतेन हिन्दीभाषान्तरेण समलंकृतम्

मुद्रणधनदाता—
वैद्यप्रवर:
त्रिगुणायत बृहस्पतिदेव शर्मा

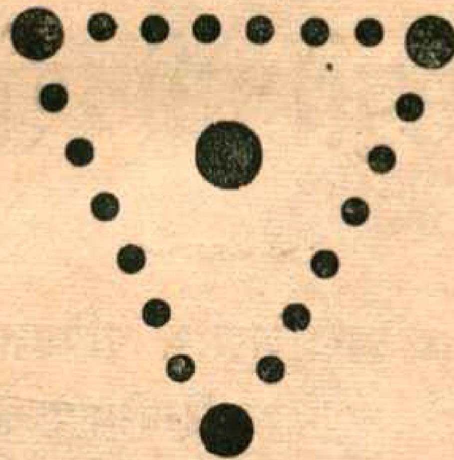
प्रकाशक:—
मिश्र गोविन्दः
भरतपुरम्

प्रथमं संस्करणम्

वि० सं० २०२०

मूल्यम् रूप्यकमेकम्

* श्री *



अमृतनिभृतशास्त्रं साधु मुद्रापयित्वा
प्रथयति बिबुधानां लब्धुकामः प्रसादम् ।
अमलमतिप्रसादीलालपुत्रोऽत्रिगोत्रो
भरतपुरनिवासी मिश्रगोविन्दशर्मा ॥

|| श्री ||

आवश्यक प्रकाशकीय निवेदन

प्रिय पाठक वृन्द ! आज हमें आप सज्जन पाठकोंके सम्मुख इस पुस्तकके प्रकाशकके रूपमें उपस्थित होते हुए अत्यधिक हर्ष हो रहा है।

यह 'श्रीसञ्जीवनीदर्शनम्' अद्भुत रहस्यकथामय पूर्णप्रसाद-गुणमण्डित स्वल्पकाय सी पुस्तक है। इसकी कथा श्रीआचार्यजी-के श्रीमुखसे उनके परमप्रेमास्पदोंने पहले कई बार सुनी भी थी। उसी कथाको उनके प्रियशिष्य श्रीबलजिन्नाथ पण्डितकी प्रार्थना-से उन्होंने देववाणीमें पिछले वर्ष काश्मीरमें पद्यबद्ध कर दिया था। संस्कृत वाङ्मयके भण्डारमें ऐसे ग्रन्थरत्न बहुत आवश्यक हैं। रत्नपारखी इसका समुचित आदर अवश्य करेंगे। पाठक इसको पढ़कर परम प्रसन्न हो ग्रन्थप्रणेताको हृदयसे धन्यवाद देंगे ही। इससे महान् लाभ जो उठाएँगे वे महान् भाग्यवान् होंगे। मैं वैद्यवर श्रीबृहस्पतिदेव शर्मा त्रिगुणायतको अनेक वर्धापन और धन्यवाद इसलिये दूँगा कि उन्होंने इसके मुद्रणका आर्थिक सारा भार स्वयं लिया और ऐसे उत्तम पुस्तकके प्रकाशनमें सहायता की। वैसे तो आचार्यश्रीके कृपापात्रोंमेंसे ही वे एकतम हैं और उन्होंने अपना कर्तव्य ही निभाया है। फिरभी उत्तम कृत्यके लिये लोगोंके धन्यवाद उन्हें मिलने ही चाहियें। श्रीबलजिन्नाथजीको भी पाठक सभी धन्यवाद स्वयं ही देंगे क्योंकि उन्हींकी कृपासे हिन्दी भाषी पाठकोंको ज्ञान लाभ होगा। अस्तु। इसमें जो भी त्रुटियाँ हों उनके लिये पाठक क्षमा करेंगे।

आपका विनीत—

श्रीगोविन्द मिश्र

भरतपुर

॥ श्रीः ॥

त्रिशूलधारिणो दिव्यात् पुरुषात्कृष्णपिङ्गलात् ।
दिव्यां सञ्जीवनीं विद्यां सम्प्राप्य सदयादहम् ॥१॥

गोविन्दबलजिन्नाथबृहस्पतिभिरर्थितः ।
सादरं साग्रहं गुप्तामपि प्रख्यापयामि ताम् ॥२॥

अविश्वासः शठो दुष्टो नेमां धारयितुं प्रभुः ।
अप्राप्यां यत्नसाहस्रैः शङ्कराऽनुग्रहं विना ॥३॥

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य संपठेतुर्यमूष्मसु ।
चतुर्दशस्वरयुतं सानुस्वारं ततः पठेत् ॥४॥

षष्ठस्वरयुतं साऽनुस्वारं स्पर्शाऽष्टमाऽक्षरम् ।
तृतीयमूष्मसु ततः सविसर्गमसंयुतम् ॥५॥

ततः प्रणवमुच्चार्य व्याहृतित्रयमुद्धरेत् ।
प्रणवादिं ततो मन्त्रं त्रैयम्बकमुदाहरेत् ॥६॥

अन्ते प्रणवमुच्चार्य विलोमव्याहृतित्रयम् ।
ततः प्रणवमुच्चार्य बीजत्रयमुदाहरेत् ॥७॥

विलोमतस्ततश्चान्ते पुनः प्रणवमुद्धरेत् ।
मध्ये त्रैयम्बको मन्त्रो वैदिको ज्ञेय उत्तमः ॥८॥

॥ श्रीः ॥

❋ श्रीसञ्जीवनोदर्शनम् ❋

—:o:—

अहैतुकी दर्शयति स्म विद्याँ
सञ्जीवनीं यस्य कृपाऽद्भुतां माम् ।
त्रिशूलधारी स ममाऽभिवन्द्यो
ददातु कल्याणमनारतं नः ॥१॥

मेरे वन्दनीय वे त्रिशूलधारी (महापुरुष) हमें सदैव कल्याण देते रहें। जिनकी निष्कारण कृपाने मुझे अद्भुत सञ्जीवनी विद्याके दर्शन कराये ॥ १ ॥

सौम्यां चिदानन्दमयीं स्वभूति-
माविश्य तुर्यामनुभूय दिव्याम् ।
स्मृत्वा स्वमृत्युञ्जयमन्त्रलब्धि-
कथां प्रवक्ष्ये जनजागरायाम् ॥२॥

प्रकाशविमर्शमयी शिवशक्तिसामरस्याकारा श्रीमहात्रिपुरसुन्द-रीस्वरूपिणी आत्मसत्तामें समाविष्ट हो दिव्य तुर्याको साक्षात् कर पश्चात् उसका अनुभव करके मृत्युञ्जयमन्त्रकी अपनी दिव्यकथाका स्मरण करते हुए जीवलोककी अपनी जाग्रदवस्थामें उस कथाको अब कहूँगा ॥२॥

स्रोतांसि शुद्धानि समुच्छलन्ति
वहत् पवित्रं मणिकर्णतीर्थम् ।
द्रोण्यां हिमाद्रेः प्रचकास्ति दिव्यं
निसर्गतप्तानि पयांसि यत्र ॥३॥

हिमालय-पर्वतकी एक घाटीमें शुद्ध और उछलते हुए जल-प्रवाहोंको धारण करने वाला पवित्र और दिव्य 'मणिकर्ण' नाम-का तीर्थ शोभायमान है, जहाँका जल स्वभावसे ही उष्ण है ॥ ३ ॥

पापानि रोगाश्च नृणां प्रदाह्या
अस्माभिरेवाऽत्र समूलदाहम् ।
इतीव तप्तानि विनिःसरन्ति
बहिर्महीतः सलिलानि मन्ये ॥४॥

लोगोंके पापों और रोगोंको जड़ोंके समेत हमने ही अच्छी तरहसे जला डालना है मानो इसी विचारसे यहाँ गरम-गरम जल-प्रवाह पृथ्वीसे बाहिर निकलते हैं ॥ ४ ॥

या पार्वती नाम हिमाद्रिकन्या
सा पार्वतीनामसरिन्मिषेण ।
तनूजवल्लालयतीह तीर्थं
क्रोडे वहन्ती निजतीर एतत् ॥५॥

जो पार्वती नामकी हिमालय पर्वतकी पुत्री है, वही पार्वती नामक नदीके बहानेसे अपने तट पर स्थित इस तीर्थको पुत्रके समान गोदमें उठाकर इसका लालन पालन करती है ॥ ५ ॥

तद् द्रष्टुकामो विचरन् पृथिव्यां
स्वच्छन्दतः किन्नरदेशमेत्य ।
तीर्त्वा शतद्रुं सरितं पवित्रां
कुलूतदेशं समगां विचित्रम् ॥६॥

उस तीर्थको देखनेकी इच्छासे अपने मनकी मौजके अनुसार पृथ्वीमें भ्रमण करते हुए किन्नर देश (रामपुर बुशहर) में पहुँचकर पवित्र नदी शतद्रु (सतलुज) को पार करके सुविचित्र कुल्लू देशको मैं गया ॥ ६ ॥

निर्मण्डनाम्ना प्रथितं हि तत्र
धामाऽस्ति यस्मिन् किल जामदग्न्यः ।
तपाँसि तेपे नृरजाँसि दग्धुं
पुण्यानि सञ्चारयितुं जनेषु ॥७॥

उस कुल्लू देशमें निर्मण्ड नामका एक प्रसिद्ध स्थान है। तात्कालिक शासकोंके अन्दर जो दोष उत्पन्न हो गये थे उनको जला डालनेके लिए और सर्वसाधारण जनोंमें पुण्योंका सञ्चार करनेके लिए श्रीजमदग्निके पुत्र (श्रीपरशुरामजी) ने जहाँ तपस्याएँ की थीं ॥७॥

उल्लङ्घ्य राजीरचलस्य काश्चित्
विपाशमुत्तीर्य चरन् क्रमेण ।
प्रत्युद्गमं तत्तटवर्त्तिमार्गे
भुवन्तरं स्थानमयां पवित्रम् ॥८॥

पर्वतकी कई श्रेणियोंको पार करके विपाशा (व्यास) नदी-के पार जाकर उसके तटके साथसाथ चलने वाले मार्गसे ऊपरकी ओर क्रमसे जाते हुए मैं भुवन्तर नामके पवित्र स्थान पर पहुंचा ॥ ८ ॥

मनोहरं स्थानमिदं कुलूते
प्रयागवत् सङ्गमवद् द्विनद्योः ।
सङ्गम्य केलीं कुरुते विपाशा
सा पार्वती यत्र सरित्प्रवाहैः ॥९॥

कुल्लू देशमें प्रयाग-राजके समान दो नदियोंके सङ्गमसे युक्त यह (भुवन्तर नामका) एक मनोहर स्थान है, जहाँ वह पार्वती नदी अपने प्रवाहोंसे विपाशाके साथ मिलकर क्रीडा करती रहती है ॥ ९ ॥

उत्तीर्य सम्भेदममुं पवित्रं
प्रत्युद्गमं तामपि पार्वतीं च ।
एकादशक्रोशपथं चलित्वा
पवित्रमापं मणिकर्णतीर्थम् ॥१०॥

उस पवित्र सङ्गमको भी पार करके और उस पार्वती नदीके भी उद्गमकी ही ओर ग्यारह कोसका मार्ग चलकर मैं पवित्र मणिकर्ण तीर्थ पर पहुंच गया ॥ १० ॥

तत्राऽपि रात्रित्रितयं निनीय
तीर्थोचितस्नानजपादिकृत्यैः ।
ततः प्रयातुं भगवन्नियोगा-
न्मतिं व्यधामन्यदिदृक्षयाऽहम् ॥११॥

वहाँ पर भी तीर्थ-स्थानके उचित स्नान जप आदि, धर्म-कृत्य करते हुए तीन रातें बिता कर मैंने अन्य अन्य स्थानोंको देखने की इच्छासे भगवानकी प्रेरणाके अनुसार वहाँसे चलनेका विचार किया ॥ ११ ॥

स्नात्वाऽह्नि तुर्ये मणिकर्णतीर्थे
सम्पूज्य देवानथ भुक्तवन्तम् ।
हिमज्ज्वरो मामतितीव्रवेगा-
ज्जग्राह देहाद इवाऽपराह्णे ॥१२॥

चौथे दिन मणिकर्ण-तीर्थ पर नहाकर देवपूजन करके भोजन कर चुकने पर दोपहरके पश्चात् मुझे शरीरमें ठण्डकके आवेश से आरम्भ होने वाले ज्वरने अत्यन्त तीव्र वेगसे पकड़ लिया मानो वह देहको खा ही डाले जा रहा हो ॥ १२ ॥

आदौ य एकान्तरतां प्रदर्श्य
चातुर्थिकं स्वं धृतवान् स रूपम् ।
निर्मथ्य देहं रभसादुषित्वा
मां पङ्क्तिमासान् कृतवानशक्तम् ॥१३॥

पहले तो जिसने त्रीयापन (एक दिन छोड़कर दूसरे दिन चढ़ जाना) प्रकट करके फिर अपना चातुर्थिक (चौथे दिन पुनः चढ़ने वाला) स्वरूप धारण किया मेरे शरीरमें बड़े बलसे दस महीने रह कर शरीरको मथ कर उसने मुझे शक्ति-हीन बनाए रखा ॥ १३ ॥

सुदृष्टपूर्वेण ततः प्रयातः
पथाऽपि तेनैव चलन् क्रमेण ।
विश्रम्य विश्रम्य दिनत्रयेण
भुवन्तरं स्थानमगां पुनस्तत् ॥१४॥

पहले अच्छी प्रकारसे देखे हुए उसी मार्गसे प्रस्थान करके (बीच - बीचमें) विश्राम करते करते, धीरे-धीरे चलता हुआ, मैं तीन दिनमें पुनः उस भुवन्तर नामवाले स्थानको पहुंचा ॥१४॥

तत्रैकमात्रं दिवसं निनीय
ततः प्रयातः सुलतानपुर्याम् ।
क्रोशत्रये तिष्ठति रम्यदेशे
भुवन्तराद्रोधसि या विपाशः ॥१५॥

वहाँ केवल एक दिन बिताकर वहाँसे सुलतानपुरीको चला गया जो (सुलतानपुरी) व्यास नदीके तट पर भुवन्तरसे तीन कोस पर एक रमणीक स्थान पर विद्यमान है ॥ १५ ॥

तत्र श्मशानेश्वरसन्निधाने
तीरे विपाशः फलपुष्परम्ये ।
हरिन्मणिश्यामतृणाढ्यदेशे
सुधर्मशालाऽस्ति बहिः पुरस्य ॥१६॥

वहाँ श्मशान भैरव (शिव) के समीप, पुष्पों और फलोंसे मनोहर बने हुए व्यास नदीके तट पर पन्नेके समान साँवले रङ्ग वाली घासकी कोंपलोंसे भरपूर स्थान पर नगरसे बाहर एक अच्छी धर्मशाला है ॥ १६ ॥

कुर्वन्ति यस्यां पथिका निवासं
प्रवासखेदप्रशमाय तस्याम् ।
एकान्तरेण प्रसभं ज्वरेण
गृहीतदेहो न्यवसं तदानीम् ॥१७॥

जिस (धर्मशाला) में यात्राके कष्टको शान्त करनेके लिए यात्री लोग निवास करते हैं। उसमें उस समय मैंने निवास किया जब कि मेरे शरीरको तीसरे दिन चढ़ने वाले बुखारने बलात्कार से पकड़ लिया था और वैसी दशामें मैं वहां रहा ॥ १७ ॥

प्रकाममेकामतिवाह्य रात्रिं
श्वोभूत एवाऽहनि रुग्णदेहः ।
आक्रान्त आसं महता ज्वरेण
प्रभातकालाद् यमसन्निभेन ॥१८॥

इच्छा पूर्वक एक रात वहां बिताने पर दूसरे ही दिन पहले रोगग्रहस्त मेरे शरीरको प्रभातकालसे ही यमराज जैसे महा-ज्वरने आक्रान्व कर लिया ॥ १८ ॥

प्रभातमारभ्य दिने हि तस्मिन्
यावद्दिनान्तं गतचेतनो व ।
कटे धरित्र्यां पतितो विचेष्टः
सदाशिवाऽधीनबलोऽतिदीनः ॥१९॥

उस दिन तो प्रभात्कालसे लेकर सूर्यास्त तक मैं भूमिके ऊपर चटाई पर निश्चेष्ट होकर मूर्छित जैसा पड़ा रहा। मैं अतीव दीन बना हुआ था और मेरा बल श्रीसदाशिवके ही हाथ में था ॥ १९ ॥

करेण दक्षेण पिधाय वक्षः
पिधाय वामेन च मेढ्रदेशम् ।
उत्तान आसं पतितस्तदानीं
विधाय पादौ किल पश्चिमायाम् ॥२०॥

पश्चिमकी ओर पैर करके मैं मुख ऊपरकी ओर किए हुए पड़ा था। मेरा दायाँ हाथ छाती पर और बायाँ उपस्थके ऊपर पड़ा था ॥ २० ॥

अत्राऽन्तरे दृश्यमदर्शि किञ्चित्
स्वप्नप्रभं दिव्यरहस्यपूर्णम् ।
न यस्य कस्याऽपि पुरः प्रकाश्यं
मयोच्यते स्नेहवशात् सतां तत् ॥२१॥

इसी बीचमें मैंने एक स्वप्न सदृश तथा दिव्य रहस्यसे पूर्ण एक दृश्य देखा। वह जिस किसीके सामने प्रकट करनेके योग्य तो नहीं है, परन्तु सज्जनोंके स्नेहके वशमें आकर मैं उसे कह ही देता हूँ ॥ २१ ॥

त्रयः पुमाँसो मम वामभागे
दिव्यं स्वरूपं परमं वहन्तः ।
आरक्तगौरा नलिनायताक्षाः
सन्ति स्थिता निर्मलमन्दहासाः ॥२२॥

मेरी बाँईं ओर परम दिव्य शरीरको धारण करने वाले लालिमासे अनुरञ्जित गौरवर्ण वाले कमलके समान विशाल-नेत्रों वाले, निर्मल तथा मन्द-मन्द मुस्कराहटसे युक्त तीन पुरुष उपस्थित हो गए ॥ २२ ॥

सुनासिकास्ते सुविशालभाला
बन्धूकपुष्पाऽरुणसत्कपोलाः ।
स्फुरद्द्विरेफाऽऽवलिनीलबाला
विशालकर्णा धृतपुष्पमालाः ॥२३॥

उनकी नासिकाएँ बड़ी सुन्दर थीं, माथे खूब विशाल थे, सुन्दर कपोल बन्धूक पुष्पोंके समान लाल थे, हिलते हुए भ्रमरों-की श्रेणी जैसे उनके काले बाल थे, कान बड़े-बड़े थे और फूलों-की मालाएँ उन्होंने पहनी थीं ॥ २३ ॥

शशिप्रभावन्मसृणाऽन्तरीया
हंसप्रभावल्लसदुत्तरीयाः ।
कौशेयकूर्पासकशोभिदेहाः
सत्पादुकाऽलङ्कृतपादयुग्माः ॥२४॥

उनके निचले वस्त्र (धोतियां) चाँदकी ज्योत्स्ना जैसे और ऊपरके वस्त्र (दुपट्टे) हँसोंकी कान्ति जैसे शोभा पा रहे थे। रेशमी अँगरखोंसे उनके शरीर शोभायमान हो रहे थे और उनके पादयुगल सुन्दर जूतोंसे अलंकृत हो रहे थे ॥ २४ ॥

चञ्चत्किरीटोल्लसदुत्तमाङ्गाः
स्फुरत्प्रभामण्डलकुण्डलाऽऽढ्याः ।
प्रवालमुक्तावलयानि पाण्यो-
र्हीराङ्गुलीयानि च धारयन्तः ॥२५॥

उनके मस्तक चमकते हुए मुकुटोंसे शोभा पा रहे थे और देदीप्यमान कान्तिसे युक्त कुण्डल उन्होंने पहने थे। हाथोंमें मोती और मूँगोंके वलय तथा हीरोंकी अँगूठियाँ धारण किए हुए थे ॥ २५ ॥

स्थूला न तुङ्गा न कृशा न ह्रस्वाः
करेषु यष्टीरपि धारयन्तः।
पापानि पुण्यानि च वीक्षयन्तो
निर्ग्रन्थिसद्वेत्रलतोद्भवास्ते ॥२६॥

न ही वे मोटे थे और न ही पतले, न ही ऊँचे थे और न ही बामने। हाथोंमें गांठोंसे रहित उत्तम बेंतकी छड़ियाँ धारण किए हुए थे और पापों और पुण्योंको दिखा रहे थे ॥ २६ ॥

आयान्ति यावन्मम वामपार्श्वे
त्रयः पुमाँसः खलु तावदेव।
ऊर्जस्विनां कोऽपि महान् महात्मा
समागतो ना मम दक्षपार्श्वे ॥२७॥

ज्यों ही ये तीन पुरुष बाईं ओरसे मेरे पास आये त्यों ही तेजस्वियोंमें कोई बड़ा भारी महापुरुष दाईं ओरसे मेरे पास आ गया ॥ २७ ॥

कृशानुवत् पिङ्गलकृष्णवर्णो
भास्वानिव प्रोज्ज्वलदात्मतेजाः।

प्रोत्तुङ्गवर्चस्विशरीरयष्टि-
राह्लाददश्चन्द्र इवाऽऽबभास ॥२८॥

उसका रङ्ग अग्निके समान कृष्ण पिङ्गल था, सूर्यके समान उसका अपना तेज देदीप्यमान था उसका पतला शरीर खूब ऊँचा और तेजस्वी था और वह चन्द्रमाके समान आह्लाद देने वाला प्रतीत हुआ ॥ २८ ॥

भृङ्गावलीसप्रभनीलनीलै-
राजानुलम्बैः प्रविमुक्तकेशैः ।
सुशोभितो यस्य विभाति मूर्धा
विभूषितो यैरपि पृष्ठदेशः ॥२९॥

भौंरोंकी श्रेणियोंके समान चमकते हुए काले और घुटनों तक लम्बे खुले बालोंसे उसका सिर शोभायमान हो रहा था और पीठ भी उन्हींसे अलंकृत हो रही थी ॥ २९ ॥

सिताऽरुणश्यामललक्षणेन
नेत्रे दधातीव ननु प्रयागम् ।
पश्यन् गभीरं करुणार्द्रदृष्ट्या
सभृङ्गपङ्केरुहलोचनोऽयम् ॥३०॥

सफेद (चारों ओर), लाल (कोनों में) और काले (मध्यमें) वर्णोंसे मानो कि अपने नेत्रमें प्रयाग तीर्थको धारण कर रहा था। जिस कमल पर भौंरा बैठा हुआ हो उसके समान नेत्रों

वाला यह महापुरुष करुणासे पसीजी हुई दृष्टिसे गम्भीरता पूर्वक देखता रहा ॥ ३० ॥

भालाऽपदेशेन वहन् मनोज्ञ-
मर्धेन्दुमेष प्रलसत्कपोलः ।
श्मश्रूणि दीर्घाणि निरन्तराणि
बिभ्रत् प्रलम्बाऽसितकेशकूर्चः ॥३१॥

खूब शोभायमान कपोलों वाला यह महापुरुष ललाटके बहाने-से सुन्दर अर्धचन्द्रको धारण किए हुए था तथा लम्बे और घने काले केशोंकी मूछों वाला था और लम्बी तथा घनी दाढीको भी धारण किए हुए था ॥ ३१ ॥

नासां वहन् कीरकुलाऽवतंसां
वक्षो विशालं कृशमध्यभागः ।
पीनोन्नतांसः सुगभीरनाभिः
प्रलम्बबाहुः परिपुष्टगात्रः ॥३२॥

यह तोतोंके समूहोंको सुशोभित बनाने वाली (मध्य में उभरी हुई) नाकको तथा विशाल वक्षःस्थलको धारण करने वाला, पतली कमर वाला, मोटे और ऊँचे कन्धों वाला, खूब गहरी नाभि वाला, लम्बे बाजुओं वाला, और हृष्ट पुष्ट शरीर वाला था ॥ ३२ ॥

गजास्यवद्रक्तविशालकर्ण-
श्छत्रं हसन् मस्तकमस्ति यस्य ।
दीर्घोरुजङ्घः कमलाङ्घ्रिपाणि-
र्दीर्घाननो हीरकदन्तपङ्क्तिः ॥३३॥

गणेशजीके समान उसके कान लाल रङ्गके और विशाल आकृतिके थे, इसका सिर तो छत्र पर हँसी हँस रहा था, इसके सिर और इसको टाँगें लम्बी थीं और इसके हाथ तथा पैर कमलों जैसे थे, इसका मुख लम्बा था और यह हीरों जैसे दाँतों की पंक्ति से युक्त था ॥ ३३ ॥

ऊर्ध्वांशुकं जीर्णमधोंशुकं च
काषायवर्णं प्रयतं दधानः ।
रुद्राक्षमालाऽस्ति गले यदीये
भस्मत्रिपुण्ड्राश्रितभालदेशः ॥३४॥

गेरुए रङ्गके पवित्र तथा जीर्ण ऊपरी वस्त्र और निचले वस्त्र-को पहने हुए था, गलेमें रुद्राक्षमाला थी और माथा भस्मके त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित था ॥ ३४ ॥

वामे त्रिशूलं करकं च दक्षे
पाणौ वहन् शीघ्रमुपेयिवान् माम् ।
मन्त्रेश्वरो मन्त्रमहेश्वरो वा
साक्षात् शिवो वेत्यनुमानयोग्यः ॥३५॥

बाएँ हाथमें त्रिशूल और दाएँ में कमण्डलु लिए हुए वह शीघ्र ही मेरे पास आ गया। वह कोई मन्त्रेश्वर था या मन्त्र महेश्वर था या साक्षात् शिव ही था ऐसा अनुमान उसके विषय में किया जा सकता था ॥ ३५ ॥

पादूं वहन् दारुमयीं पदाभ्यां
समेत्य शीघ्रं मम दक्षपार्श्वे ।
'जलं पिपासाकुल! दीयमानं
मया प्रकामं पिब' इत्युवाच ॥३६॥

पैरोंमें लकड़ीकी खड़ावें पहने हुए वह शीघ्र ही दाईं ओर से मेरे समीप आकर कहने लगा—"हे प्याससे व्याकुल बने हुए! मुझसे दिए जा रहे जलको इच्छा पूर्वक पी लो" ॥३६॥

तूष्णीं स्थितास्ते पुरुषास्त्रयोऽपि
वामेन मे दक्षिणतः स एकः ।
परस्परं सन्ददृशुः परन्तु
न कोऽपि कं प्रत्यपि किञ्चिदूचे ॥३७॥

मेरी बाईं ओर चुपचाप खड़े उन तीनों पुरुषोंने और दाईं ओर उस एकने एक दूसरेको खूब देखा परन्तु किसीने भी किसीको भी कुछ कहा नहीं ॥ ३७ ॥

स मामनास्वादितपूर्वमम्भ-
स्त्रिशूलधारी करकेण कामम् ।

निजेन सम्पाय्य दयार्द्रचेता-
स्त्रैयम्बकं मन्त्रमुपादिदेश ॥३८॥

जो जल मैंने पहले कभी भी पीया नहीं था उसे मुझे पिलाकर उस त्रिशूलधारीने दयासे आर्द्र चित्त हो कर मुझे त्रैयम्बक-मन्त्रका उपदेश किया ॥ ३८ ॥

ऊचे च कामं जप मन्त्रमेनं
स्थितोऽस्म्यहं सम्प्रति रक्षकं ते ।
मन्त्रस्य मृत्युञ्जयदेवताया
जपान्न जीवातुवरोऽस्त्युपायः॥३९॥

और मुझे कहा, "में यहाँ खड़ा हूं। तुम इस मन्त्रका खूब जप करो जो कि तुम्हारा रक्षक है। मृत्युञ्जय देवताके मन्त्रसे बढ़ चढ़कर कोई भी और जीवन दान देने वाला उपाय नहीं है ॥ ३९ ॥

मौनं समालम्ब्य दिनाऽवसानं
यावत् स्थिताश्चित्रगता इवाऽऽसन् ।
सर्वेऽपि तेऽहं जपमग्न आस-
मुत्तानपातं पतितस्तथैव ॥४०॥

दिनकी समाप्ति तक जब तक कि वे सभी चुपचाप चित्र पर खिंचे हुए जैसे खड़े थे, तब तक मैं उसी तरह पेट ऊपर किए हुए पड़ा पड़ा ही जपमें मग्न रहा ॥ ४० ॥

काष्ठामवाचीं पुरुषास्त्रयस्ते
त्रिशूलधारी च दिशामुदीचीम् ।
अलक्ष्यगाश्चक्रुरलं प्रसन्ना
देहं तदा विज्वरमन्वभूवम् ॥४१॥

जब प्रसन्न बने हुए उन तीनों पुरुषोंने दक्षिण दिशाको और उस त्रिशूलधारीने उत्तर दिशाको अदृश्य गतिसे जाते हुए अलंकृत किया (अर्थात् उधर चले गए) तो मैंने ऐसा अनुभव किया कि मेरा शरीर ज्वर से मुक्त हुआ है ॥ ४१ ॥

तदाप्रभृत्येव जपामि मन्त्रं
त्रैयम्बकं रोगनिवारणाय ।
कोऽन्यः शिवाद्वक्तुमलं प्रभावं
मन्त्रस्य तस्याऽस्य जनोऽनभिज्ञः ॥४२॥

उसी समयसे लेकर मैं रोगोंका निवारण करनेके लिए त्रैयम्बक मन्त्रका जप करता आया हूं। उस प्रकारके इस मन्त्रके प्रभावको कहनेमें शिवसे अन्य कौन अज्ञानी जीव समर्थ बन सकता है ॥ ४२ ॥

जानाम्यहं नैव किमप्यमीषां
तेषां चतुर्णामपि नाम धाम ।
वृत्त हि साक्षादनुभूतमेतत्
संस्मृत्य संस्मृत्य सदानमामि ॥४३॥

मैं उन चारोंहीका कुछ भी नाम या धाम (स्थान) नहीं जानता हूँ । इस साक्षात् अनुभूत वृत्तान्तका स्मरण कर करके इस सद्वृत्तको प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥

मन्त्रस्य मृत्युञ्जयदेवतायाः
प्राप्तेः कथेयं ननु वर्णिताऽत्र ।
अनेन तुष्यन् परमेश्वरो नः
पायादशेषादपि रोगजातात् ॥४४॥

मृत्युञ्जय देवताके मन्त्रकी इस कथाका यह वर्णन मैंने किया है । इससे परमेश्वर प्रसन्न और सन्तुष्ट होते हुए हमें सारे ही रोगोंके समूहोंसे बचाएँ ॥ ४४ ॥

वैराग्यवाञ्शोभनहृत्सदैव
प्रोद्यद्विवस्वानिव दृष्टिरम्यः ।
ना योऽपि शैवीशरणः स लोक–
नाथोऽचिराच्छम्भुदयाबलः स्यात् ॥४५॥

जो भी पुरुष मृत्युञ्जय शिवकी इस भगवती शक्तिकी शरण लेता है उसे श्रेष्ठवैराग्यकी तथा सुन्दर हृदयकी प्राप्ति हो सकती है । सर्वदाके लिए उगते सूर्यके समान देखनेमें वह सुन्दर बन सकता है । शम्भुकी दया (अनुग्रह) ही उसका निरन्तर बल रहता है और उसी बलसे वह शीघ्र ही लोकोंका स्वामी तथा रक्षक बन सकता है ॥४५॥

सौरीं समासेव्य सरस्वतीं स्वां
सदोन्नताः सन्तु समस्तसन्तः ।
समुद्धरन्तः स्वसमाजसंस्थाः
समुन्नयन्तः स्वनयं स्वराष्ट्रम् ॥४६॥

सम्पूर्ण सन्तलोग सर्वदा उन्नत रहें, वे अपनी स्वतन्त्र नीतिसे सम्पन्न अपने राष्ट्रको समुन्नत करते रहते हैं और इसीलिए वे अपनी सामाजिक व्यवस्थाओंके समुद्धारके लिए जुटे रहते हैं। वे भली भांति जानते हैं कि सम्पूर्ण वाणी और सम्पूर्ण अर्थोंके समस्त स्रोतवाली उनकी अपनी विद्वत्तापूर्ण सरस्वती है। उसमें सभी शक्तियोंका आदि बीज है वह कामकला है। कारण वह सृष्टि स्थिति संहार निग्रह और अनुग्रह इन पाँचों कृत्योंके समरस अधिष्ठान सविताकी अपनी है इसीलिए सभी सत् पुरुष दीर्घकालसे निरन्तर, सत्कारसे उसका आसेवन करते रहते हैं ॥४६॥

श्रीमद्विक्रमभूपतेरथगते देहाधिपेवत्सरे
मासे भाद्रपदे सितेतरदले प्रद्युम्नतिथ्यां दिवा ।
श्रीत्रैयम्बकमन्त्ररत्नमतुलं लब्ध्वा प्रदोषव्रते
आचार्याऽमृतवाग्भवो विजयते शम्भोः प्रसादादयम् ॥४७॥

श्रीविक्रमादित्य महाराजके १९८८वें संवत्में भाद्रपद मासके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी तिथिको दिनके समय प्रदोष व्रतमें अनुपम श्रीत्रैयम्बक-मन्त्र-रत्नको प्राप्त करके ये आचार्य अमृतवाग्भवजी शम्भुके अनुग्रहसे सबसे उत्कृष्ट बन रहे हैं ॥४७॥

कृष्णे नभसि चाष्टम्यामश्विन्यां भौमवासरे ।
एकोनविंशत्यधिकसहस्रद्वयसम्मिते ॥४८॥
विक्रमार्कादिह गते शुभे काश्मीरमण्डले ।
कुलग्रामे वसन् विज्ञबलजिन्नाथवेश्मनि ॥४९॥
श्रीत्रैयम्बकमन्त्रस्य सम्प्राप्तेर्वर्णनं व्यधात् ।
देववाणीपद्यमयं विद्वानमृतवाग्भवः ॥५०॥

२०१९ विक्रम संवत्सरमें श्रावण कृष्णपक्षकी अष्टमीको भौमवारके दिन अश्विनी नक्षत्र पर सुन्दर कश्मीर देशमें कुलग्राममें बलजिन्नाथ नामक पण्डितके घरमें रहते हुए विद्वान् अमृतवाग्भवने संस्कृत श्लोकोंमें श्रीत्रैयम्बकमन्त्रकी प्राप्तिका यह वर्णन किया ॥ ४८, ४९, ५० ॥

इति श्रीसर्वतन्त्रस्वतन्त्र-महामहिम-आचार्य-
श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीतं सञ्जीवनीदर्शनं सम्पूर्णम् ।

रघु प्रेस, जोगीवाड़ा, नई सड़क, देहली ।

श्रीपञ्चस्तवी

द्वितीय संस्करण प्रस्तुत है। यह प्रथम लघुस्तवकी ६०० वर्षसे भी अधिक प्राचीन संस्कृत टीका तथा राष्ट्रभाषानुवादके साथ मुद्रित है। शेष चार स्तोत्र मूलमात्र हैं। साथ ही इस संस्करणमें श्रीमहानुभवशक्तिस्तव भी दिया गया है। कागज और छपाई बहुत उत्तम है। डाक व्यय अलग। मू० ५० न. पै.

तीसरी बार **श्रीराष्ट्रालोक** छप गया

राष्ट्रभाषानुवाद-सहित

राष्ट्रवादी ही आर्य हैं आर्य ही शान्तिकी स्थापना कर सकते हैं।

भारत भारतीयोंका है

स्वातन्त्र्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। राष्ट्र हमारा पिता है, माता है, और आचार्य है। हम सदा उसके सेवक हैं। हमारा राष्ट्र हमें भोग और मोक्ष दोनों देता है।

हम सच्चे राष्ट्रिय हैं।

अभारतीय भारत के अतिथि हो सकते हैं राष्ट्रिय नहीं

हम संक्रान्तिका सदा आदर करते हैं। हमें ऐसी शान्ति नहीं चाहिये जो राष्ट्रको परतन्त्र बनाये।

राष्ट्रिय राष्ट्रके पुत्र होते हैं, पति नहीं

भारतीय अपने आपको हिन्दू माननेमें गौरवका अनुभव करते हैं। भारतीय आदर्शके विपरीत क्रान्ति किंक्रान्ति है संक्रान्ति नहीं। यदि आप इन भावोंसे स्नेह करते हैं तो "श्रीराष्ट्रालोक" अवश्य पढ़िये।

श्रीराष्ट्रालोक परम पवित्र भारतीय आदर्शका एक जीवन शास्त्र है

राष्ट्रप्रेमी इसका आदर कर रहे हैं। जनता हाथों हाथ अपना रही है। आप भी आज ही मँगाइये। (मू० ५० न० पै०) मार्गव्यय अलग।

श्रीः

श्रीमदमृतग्रन्थमालाके पाँच पुष्प

१—श्रीमहाऽनुभवशक्तिस्तवः—संस्कृत तथा हिंदी व्याख्यासहित
मू० ५० न. पै.

२—श्रीपरशुरामस्तोत्रम्—राष्ट्रभाषानुवादसहित सचित्र
तृतीय संस्करण अमूल्य

३—श्री श्रीविंशतिकाशास्त्रम्—दो संस्कृत व्याख्याओं तथा एक हिंदी व्याख्याके साथ मू. ४ रु० ७५ न.पै.

४—श्रीसप्तपदीहृदयम्—संस्कृत, हिंदी, इंगलिश रूपान्तरोंके साथ
मू. १ रु०

५—श्रीसञ्जीवनीदर्शनम्—हिंदी भाषान्तरसहित मू. १ रु०

श्रीग्रन्थमालाके दो पुष्प

१—श्रीपञ्चस्तवी—प्रथमस्तव संस्कृत व्याख्या तथा हिंदी भाषान्तरके साथ मू० ७५ न. पै.

२—श्रीललितासहस्रं काव्यम्—हिंदी भाषानुवादके साथ
मू० ५ रु० २५ न. पै.

अन्य ग्रन्थ

१—श्रीराष्ट्रालोकः—राष्ट्रभाषानुवादसहित तृतीय संस्करण
मू० ५० न. पै.

२—श्रीआत्मविलासः—श्रीसुन्दरीराष्ट्रभाषाभाष्यसहित
मू० २ रु०

३—श्रीसंक्रान्तिपञ्चदशी—राष्ट्रभाषागद्यपद्यानुवादसहित

४—श्रीमदमृतसूक्तिपञ्चाशिका—संस्कृत तथा राष्ट्रभाषाव्याख्या सहित

५—श्रीस्वाध्यायमहिमस्तोत्रम्—हिंदी भाषान्तरके साथ।